ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 167-170

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

मिर्जापुर सम्भाग की मृद्भाण्ड परम्परा

बृजेश कुमार यादव

शोध अध्येता– प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received- 26.02.2022, Revised- 03.03.2022, Accepted - 16.03.2022 E-mail: brijeshrdy486@gmail.com

सारांशः – *'प्राचीन संस्कृतियों के स्वरूप निर्धारण में जिन पुरातात्त्विक अवशेषों को विशेष रूप से उपयोग प्रचलित रहा है, उनमें मृद्भाण्ड प्रमुख है, क्योंकि ये अपने आकार, प्रकार, बनावट, रंगरूप, अलंकरण आदि के आधार पर किसी संस्कृति विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके कारण विभिन्न संस्कृतियों के नामकरण भी मृद्भाण्डों के नाम के आधार पर रखे गये है। वस्तुतः किसी संस्कृति के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कलात्मक अभिरूचि, पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय तन्त्र तथा अन्य संस्कृतियों से उसके सम्बन्ध को प्रकाश में लाने के लिए मृद्भाण्डों का विशेष योगदान रहा है। साथ ही मृद्भाण्ड सांस्कृतिक विकास, समागम एवं परिवर्तन को भी उद्घाटित करते है। पुरातात्त्विक स्थलों के विभिन्न स्तरों से प्राप्त होने वाले मृद्भाण्डों का सांख्यिकीय अध्ययन उस स्थान पर रहने वाले लोगों के आर्थिक जीवन में उतार–चढ़ाव का स्पष्ट संकेत करता है।*

कुंजीभूत शब्द– प्राचीन संस्कृतियों, निर्धारण, पुरातात्त्विक अवशेषों, मृद्भाण्ड, रंगरूप, अलंकरण, प्रतिनिधित्व, आर्थिक।

साहित्यिक स्रोतों में मृद्भाण्ड – वैदिक साहित्य में पात्रों एवं कुम्भकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। तैत्तरीय संहिता में पात्र निर्माण हेतु मिट्टी को "मृद" एवं ऐतरेय ब्राह्मण में "मृत्तिका" कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिट्टी के पात्रों को "मृण्मय पात्र" की संज्ञा से विभूशित किया गया है। वाजसेनयी संहिता में पात्र निर्माता को कुलाल एवं मैत्रायणी संहिता में 'मृतपक' कहा गया है।[1] साथ ही चाक द्वारा भाण्डों का निर्माण कर अपनी जीविका चलाने के कारण मार्कण्डेय पुराण एवं पद्मपुराण में इन्हें 'चक्रोपजीविन' कहा गया है। वैदिक साहित्य में मृद्भाण्ड को सुदृढ़ बनाने का भी उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जल में पलाश के पत्तों को डालकर मसला जाता है। पत्तों को मशलने से जल फेनिल हो उठता है।[2] तदन्तर मिट्टी में अजमोल, बकरी के बाल, कंकड़, प्रस्तर एवं लोहे का चूर्ण भी मिलाने का निर्देश है। इन सभी वस्तुओं को मिश्रित कर मिट्टी को खूब गूँथा जाता था। ये सभी वस्तुएँ मिट्टी में पात्र की स्थिरता के लिए भी मिलाई जाती थीं। वस्तुतः अग्नि पर पड़ने पर उक्त सभी वस्तुओं पर रसायनिक क्रिया होती थी जिस कारण पात्र पर एक रंग उभर आता था।

बौद्ध साहित्य में अनेक प्रसंगों में हमें विभिन्न वस्तुओं से निर्मित एवं विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काष्ठ, मिट्टी एवं धातुओं से निर्मित पात्रों का विवरण प्राप्त होता है। बौद्ध साहित्य में जिन प्रमुख पात्रों का उल्लेख हुआ है। उनमें 'कोलम्ब' 'घट, 'सराव' कुम्भि' 'कटाह' 'अक्खा' 'कलोपि' 'द्रोणी' 'कंस' 'परियोग' 'थाल' 'याति' कोसक' एवं 'वारक' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पालिग्रन्थ विनय पिटक में उल्लेख आया है कि आयुष्मान उरूवेल काश्यप के प्रबजित होने पर संघ के सदस्यों को ताँबे, लकड़ी एवं मिट्टी से निर्मित पात्र मिले थे, जबकि थेरीगाथा में काँसा, सोना एवं मिट्टी के पात्रों का उल्लेख हुआ है। बौद्ध साहित्य महाउमग्ग जातक एवं कुसजातक में चाक का उल्लेख हुआ है। साथ ही कुसजातक में पात्रों को चित्रित करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त पात्रों को भट्ठी में पकाने का भी विवरण मिलता है। संयुक्त निकाय में प्रयुक्त "कुम्भकारपाका" शब्द को भिक्षु जगदीश कश्यप एवं भिक्षु धर्मरक्षित ने "आँवा" कहा है।[3] राहुल सांस्कृत्यायन ने चुल्लवग्ग में वर्णित 'कसक' शब्द को भी आँवा कहा है।

प्राचीन जैन साहित्य उवासगदसाओं से ज्ञात होता है, कि कुम्भकार विभिन्न प्रकार के पात्रों यथा–जार, कटोरा, घड़ा आदि का निर्माण करता था। पोतासपुर का प्रसिद्ध चित्रकार सद्दालपुत्त कुशल कुम्भकार था, जिसके पास 500 दुकानें थी तथा शहर के बाहर के कारीगर भी उसके यहाँ काम करते थे।

पाणिनी के अष्टाध्यायी में कुम्हार के लिए "कुलाल" तथा "कुम्भकार" शब्द का उल्लेख किया गया[4], जबकि पतंजलि कृत महाभाष्य में घट बनाने के कारण कुलाल के लिए कुम्भकार नाम अधिक प्रचलित दिखायी पड़ता है तथा बड़े पात्र बनाने के लिए 'महाकुम्भकार' नाम मिलता है। कुम्भकार द्वारा बने पात्रों को महाभाष्य एवं अष्टाध्यायी में 'कौलालक' कहा गया है।

पुरातात्त्विक स्रोतों में मृद्भाण्ड – साहित्यिक स्रोतों के अलावा पुरातात्त्विक स्रोतों से भी मृद्भाण्डों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए 'मृद्भाण्डों को पुरातत्त्व की वर्णमाला' कहा जाता है। अब तक हुए पुरातात्त्विक षोधों से ज्ञात हुआ है कि कुम्भकला का प्रादुर्भाव नवपाषाण काल में हुआ, जबकि मध्यपाषाण काल के उत्तरवर्ती चरण से भी कुछ पात्रों के प्रमाण हमें गंगा घाटी में स्थित सरायनाहर राय, महदहा, दमदमा से प्राप्त हुए हैं।[6] इस काल के मृद्भाण्ड हस्तनिर्मित, कम पके हुए, मोटे एवं भंगुर थे। इनको बनाने के लिए प्रयुक्त मिट्टी में धान की भूसी और पुआल के छोटे–छोटे टुकड़ें सालन के

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। इसके अतिरिक्त विन्ध्य क्षेत्र के मोरहना पहाड़, बघहीखोर, लेखहिया, चोपनीमाण्डों एंव घघरिया इत्यादि उत्खनित पुरास्थलों से भी मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। इसके निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी अच्छी तरह से तैयार नहीं की गयी है। मोरहना पहाड़, बघहीखोर, लेखहिया एवं चोपानीमाण्डों से प्राप्त मृद्भाण्डों के बाहरी सतह पर उत्कीर्ण कर बने अलंकरण तथा चोपानीमाण्डों व लेखहिया से ही कछुए की हड्डी के छाप से बने अलंकरण भी प्राप्त हुए है। नवपाषाण काल से कुम्भकला की निरन्तरता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगती है, जो विभिन्न कालों में अनेक उतार चढ़ाव से गुजरते हुए आज तक विद्यमान है। इस काल से हस्तनिर्मित एवं चाक निर्मित दोनों प्रकार के मृद्भाण्डों की प्राप्ति होने लगती है तथा ये पात्र पूर्व की अपेक्षा आकार–प्रकार, रंग, रूप तथा बनावट में विभिन्नता लिये हुए हैं। इनमें से कुछ पात्र अच्छी तरह से गुँथी हुई मिट्टी से बनाये गये है। इस काल में मुख्यतः चार प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त होते हैं – मार्जित लाल मृदभाण्ड, मार्जिन धूसर मृद्भाण्ड, रज्जुछाप मृद्भाण्ड तथा रूक्ष सतह वाले मृद्भाण्ड।[7] इसके अतिरिक्त लाल मृद्भाण्ड सामान्य रूप से प्राप्त होते है।

मिर्जापुर सम्भाग के सर्वेक्षण से प्राप्त मृद्भाण्डों का अध्ययन उनके मानक प्रतिमानों के आधार पर किया गया है। इसमें मृद्भाण्डों के रंग, गढ़न, निर्माण तकनीक, सतह प्रलेप एवं अलंकरण प्रमुख हैं। इस सन्दर्भ में डॉ0 बी0पी0 सिन्हा का मत है कि "समस्त अवशेषों में मृद्भाण्ड खण्डों के अवशेषों का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोण से होना उचित है, जिससे ज्ञात हो जायेगा कि कौन से पात्र स्थानीय महत्त्व के थे तथा किन पात्रों का क्षेत्र विकसित था।[8] मिर्जापुर सम्भाग के सर्वेक्षित पुरास्थलों से प्राप्त मृदभाण्डों को निर्माण तकनीकी, प्रलेप एवं रंग के आधार पर सात भागों में विभाजित किया गया है।[9]

1. कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड (Black and Red ware)
2. कृष्ण मृद्भाण्ड (Black ware)
3. कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड (Black Slipped ware)
4. उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड (Northen Black Polished ware)
5. धूसर मृद्माण्ड (Grey ware)
6. लाल मृद्भाण्ड (Red ware)
7. लाल लेपित मृद्भाण्ड (Red Slipped Ware)

(1) कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड– इस प्रकार के मृद्भाण्डों का निर्माण इन्वर्टेड फायरिंग तकनीकी (विपर्यस्त विधि) के द्वारा किया जाता था, जिसमें पात्र को उल्टा रखकर आँवे में पकाया जाता था, जिसके परिणामस्वरूप हवा के सम्पर्क के कारण आन्तरिक भाग काला, जबकि वाह्य भाग लाल हो जाता था। इसका नामकरण चार दशक पूर्व सर्वप्रथम ह्वीलर ने किया था तथा इसे प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के अन्तर्गत रखा गया था जिसे सातवाहन पात्र परम्परा के नाम से जाना जाता है।[10] मध्य गंगा घाटी में यह मृद्भाण्ड ताम्राश्मीय संस्कृति से सम्बन्धित है। यद्यपि ये मृदभाण्ड सिन्धु घाटी से लेकर लगभग ऐतिहासिक युग तक मिले हैं, किन्तु अलग–अलग सन्दर्भों में इसका स्वरूप भिन्न है, सेनुवार, चिराद, लहुरादेवा से यह नवपाषाण काल के सन्दर्भ में प्राप्त हुआ है तथा कालान्तर में कांस्यकालीन आद्यैतिहासिक तथा प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल तक प्राप्त होते हैं।[11] कृष्ण लोहित मृद्भाण्ड का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। जिसमें इसे नील लोहित कहा गया है, (या ते चकुरामे पात्रे या चक्रुर्नील लोहिते आए मासे कृत्या यां चक्रस्तयाकृपाकृतोज्ञति)।

(2) कृष्ण मृद्भाण्ड– यह मृद्भाण्ड परम्परा नवपाषाण काल (लहुरादेवा उपकाल 1 ब) से प्रारम्भ होकर ऐतिहासिक काल तक प्राप्त होते हैं। ये मृद्भाण्ड कृष्ण मार्जित पात्रों के सदृश्य है, किन्तु इनमें चमक का अभाव है तथा इनका अन्तर्भाग काला है। पात्रों के गढ़न, अन्तर्भाग एवं सतहोपचार एवं आकार प्रकार के आधार पर कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड एवं कृष्णीय मृद्भाण्ड में विभेद किया जा सकता है। सामान्यतः काले मृद्भाण्ड अपरिष्कृत, अनेक प्रकार के मिश्रण से युक्त एवं अन्तर्भाग में संरध्र हैं। दोनों पात्रों की एक और विशेषता यह है कि काले मृदभाण्ड का निर्माण पूर्ववर्ती मार्जित काले मृद्भाण्ड से हुआ है जबकि कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड ताम्राश्मीय कालीन संस्कृति (ताम्र पाषाण काल) की विशेषता है और इनका निर्माण इसी काल में हुआ है। मिर्जापुर जनपद में इस प्रकार के मृद्भाण्ड सवरेह एवं भरपुरा II पुरास्थल से ज्ञात हुए हैं, जिनमें थालियाँ, कटोरे व घड़ें आदि प्रमुख पात्र प्रकार हैं।

(3) कृष्ण लेपित मृदभाण्ड– गंगा घाटी से प्राप्त कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड का भारतीय पुरातत्त्व में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मिर्जापुर सम्भाग से इस प्रकार के मृद्भाण्ड कई पुरास्थलों से प्राप्त हुए है। सर्वेक्षण से प्राप्त इन मृद्भाण्डों को गढ़न के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया गया है, जो उत्तम गढ़न (Fine Fabric), मध्यम गढ़न तथा मोटे गढ़न से सम्बन्धित है। ये मृद्भाण्ड अच्छी तरह से गुँधी हुई मिट्टी से बने है तथा इसे सत्वर गति से चलने वाले चाक पर निर्मित किया गया है। इसकी सतह पर काला चिकना लेप लगाकर सतहोपचार किया गया है तथा मार्जिकरण करके पात्रों को चमकाया भी गया है। इस

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

प्रकार के मृद्भाण्डों का अन्तर्भाग कालापन लिये हुए भूरा या धूसर है। उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड की तुलना में कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड मध्यम एवं अपरिष्कृत गढ़न के हैं, इनमें लगाये गये लेप उतने उत्कृष्ट नहीं हैं, जितने उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड के हैं। इन्हें चमक, खनक एवं अन्तर्भाग (Core) से ही उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड से अलग किया जाता है। इस प्रकार के प्राप्त मृदभाण्डों मे कटोरे व थाली प्रमुख हैं। इस पात्र परम्परा से सम्बन्धित पुरास्थलों में करहट और औरईयाँ, डोहरी प् दर्रा एवं जलालपुर मैदान आदि पुरास्थल है।

(4) उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड– प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति की सबसे विशिष्ट मृद्भाण्ड परम्परा उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड (Nothern Black Polished Ware) है। जो भारतीय पुरातत्त्व विशेषकर उत्तर भारत के पुरातत्त्व की एक महत्त्वपूर्ण पात्र परम्परा है। मृदापात्र विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और पुराविदों में असामान्य रूप से गहरी छाप छोड़ने की अपनी विशेषता एवं विभिन्नता के कारण यह उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृदभाण्ड परम्परा (एन0बी0पी0डब्ल्यू0) के नाम से विश्वविख्यात है। इन पात्रों की चमक और गढ़न आकर्षित करने वाली है। यह अपनी विशिष्ट चमक, धात्विक खनक एवं उत्कृष्ट निर्माण तकनीकी के कारण अन्य मृद्भाण्डों से अलग है। काले, सुनहरे, रूपहले (Silvery), नीले, नारंगी, चॉकलेटी, गुलाबी एवं लाल रंगों में यह पात्र भारत समेत पाकिस्तान, नेपाल एवं श्रीलंका के कई पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। यह पात्र परम्परा नगरीय स्थलों पर बड़ी मात्रा में प्राप्त होती रही है। उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड परम्परा क्रमशः सारनाथ, भीटा एवं तक्षशिला जैसे पुरास्थलों से सर्वप्रथम प्रकाश में आयी। इस प्रकार के मृद्भाण्ड खण्ड सर्वप्रथम 1904–05 ई0 में सारनाथ के उत्खनन से प्राप्त हुए थे। तत्पश्चात् यह पात्र 1911–12 ई0 में प्रयागराज जनपद के भीटा से जान मार्शल को मिले, जिसे उन्होंने 'फाइन ब्लेक लस्टरस वेयर या काली कांचित मृद्भाण्ड' की संज्ञा दी।12 पुनः 1934 ई0 में मार्शल को तक्षशिला के भीर टीले के उत्खनन से ऐसे मृद्भाण्ड प्राप्त हुए, जिसे उन्होंने यूनानी कृष्ण मृद्भाण्ड की नकल माना हैं। 1946 ई0 में अहिक्षत्र के उत्खनन से प्राप्त ऐसे मृद्भाण्ड को सर मार्टीमर ह्वीलर एवं कृष्णदेव महोदय ने उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड कहा। बाद के उत्खननों से न केवल इस पात्र परम्परा के चतुर्दिक सीमा का विस्तार हुआ वरन् यह उत्तर भारत में इस सांस्कृतिक काल में मिलने वाली प्रमुख पात्र परम्परा बन गई। प्रारम्भ में यह अनेक पुरास्थलों से काले रंग में ही प्राप्त होने के कारण इसका नामकरण उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड, उत्तरी काली चमकीली पात्र (एन0बी0पी0) पड़ा और बाद में इस पात्र परम्परा का यही नाम व्यहृत हो गया।

मिर्जापुर सम्भाग से प्राप्त इस प्रकार के मृद्भाण्ड मध्यम एवं उच्च गढ़न स्वरूप के हैं, जिनमें थालियाँ एवं कटोरे प्रमुख है। इनका निर्माण भली–भाँति तैयार की गयी तथा अच्छी प्रकार से मर्दित मिट्टी से किया गया है। यह सत्वर गति से चलने वाले चाक पर निर्मित होते थे और उन्हें उच्च तापमान पर पकाया गया है। इनके सतह पर एक विशेष प्रकार की चमक अथवा दीप्ति मिलती है। इनका अंतर्भाग काला, धूसर एवं कभी–कभी लाल रंग लिये हुए है। किन्हीं–किन्हीं पात्रों के आधार एवं आन्तरिक भाग में चमकदार लेप नहीं है, जिसके कारण यह धूसर रंग का दिखायी पड़ता है। इससे विदित होता है कि धूसर पात्रों पर लेप लगाकर उन्हें रगड़कर चमकाया जाता रहा होगा। इस समयावधि में मिर्जापुर जनपद के हकानीपुर, करहट, डोगरी–प्रथम, दर्रा, जलालपुर मैदान आदि पुरास्थलों के सर्वेक्षण से प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा भदोही जनपद के एकाधिक स्थलों से भी उत्तरी कृष्ण परिमार्जित पात्रों के एकरंगी श्रेणी के काले, सुनहरे (Golden), रूपहले एवं नीले रंग के सादे

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

पात्रखण्ड मिले हैं।

(5) धूसर मृद्भाण्ड– मिर्जापुर सम्भाग से इस प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, जो मध्यम व उच्च गढ़न के हैं। इनका निर्माण अच्छी तरह से गूँथी हुए मिट्टी से सत्वर गति से चलने वाली चाक पर किया गया है। इनका अन्तर्भाग धूसर रंग का है तथा इन पर हल्का धूसर रंग का लेप लगा हुआ है। इन पात्रों पर अलंकरण का पूर्णतया अभाव है। इस प्रकार के मृद्भाण्ड मिर्जापुर सम्भाग के औरइयाँ, करहट एवं केवटाबीर आदि पुरास्थल से प्राप्त हुए हैं। उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड संस्कृति के प्रायः सभी पुरास्थलों से धूसर मृद्भाण्ड की प्राप्ति हुई हैं। पात्रो में थाली एवं कटोरे के खण्ड प्रमुख है।

(6) लाल मृद्भाण्ड– ये प्रचुर मात्रा में इस सम्भाग के सभी पुरास्थलों से प्राप्त हुए है, जो विभिन्न सांस्कृतिक कालों से सम्बन्धित है। यद्यपि प्रत्येक काल के लाल मृद्भाण्डों की अपनी अलग विशेषताएँ है। पात्र प्रकारों में गढ़न, अलंकरण, चित्रण आदि प्रत्येक काल में अलग–अलग है, जो विभिन्न सांस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती है। ये पात्र उत्तम, मध्यम एवं मोटें गढ़न वाले है। अधिकांष पात्रों पर लाल रंग के प्रलेप लगाया गया है, जो हल्के से लेकर गाढ़े रंग का है। कुछ पात्रों पर लेपन नहीं है, जो केवल भट्ठी में पकने के कारण लाल हो गये है। इन पर कुरेदकर, छापकर एवं चिपकवों विधि द्वारा अलंकरण किये गये हैं। पात्रों में थाली, तश्तरी, कटोरें, द्रोणी, घड़ा, कोखदार हॉण्डी, टोटीदार पात्र, घुंडीयुक्त के ढक्कन, इत्रदान इत्यादि प्रमुख हैं।

(7) लाल लेपित मृद्भाण्ड– यह मृद्भाण्ड परम्परा लोहित पात्रों के सदृश ही हैं, किन्तु लेपन की विधि स्वरूप के कारण यह लोहित पात्रों से भिन्न हो जाती है। ऐसे पात्रों पर विशेष रूप से तैयार लाल रंग का प्रलेप लगाया जाता था। इन पात्रों पर विभिन्न प्रकार के चित्रण मिलते हैं। पात्र प्रकारों में कटोरें, घड़ें, हाण्डी प्रमुख पात्र है। ये मिर्जापुर सम्भाग के उत्तर भदोही जनपद के द्वारकापुर तथा मिर्जापुर जनपद के अगियाबीर पुरास्थल से मिले है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी मृद्भाण्ड मिर्जापुर सम्भाग के कई पुरास्थलों से प्राप्त हुए है। इस सम्पूर्ण मृद्भाण्ड परम्परा के विश्लेषण से विभिन्न प्रकार के पात्र ज्ञात हुए है। जिनमें कटोरें, घड़े, तसले (द्रोणी), थाली, ढक्कन एवं इत्रदानी आदि प्रमुख प्रकार है, जो इस सम्भाग की विभिन्न संस्कृतियों के साथ सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्वरूप को परिलक्षित करते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, बी0पी0 1969 : सम प्राब्लम ऑफ एंशिएण्ट इण्डियन पॉटरीज, पॉटरीज इन एंशिएण्ट इण्डिया, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, पृ0 306.
2. शुक्ल, सुभाष चन्द्र 2012 : प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्त्व में मृद्भाण्ड, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 52.
3. वैद्य, पी0एल0 (सं0 1930) : उवासग दसाओं, पूना, पृ0 47–60.
4. अग्रवाल, वासुदेवशरण 2014 : पाणिनीकालीन भारतवर्ष (अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक अध्ययन) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ0 221.
5. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल 2001 : पतंजलिकालीन भारत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ0 311.
6. शर्मा, जी0आर0, बी0डी0 मिश्रा एवं जे0एन0 पाल 1980 : विगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर, अविनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 24.
7. पाल, जे0एन0 1980 : सेरामिक इण्डस्ट्रिज ऑफ मेसोलिथिक पीरियड ऑफ विन्ध्याज, इण्डियन प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ0 128–32.
8. सिन्हा, बी0पी0 1969 : सम प्राब्लम ऑफ एंषिएण्ट इण्डियन पॉटरीज, पॉटरीज इन एंशिएण्ट इण्डिया, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, पृ0 9.
9. वर्मा, बी0एस0 1969 : ब्लेक एण्ड रेड वेयर इन बिहार, पाटरीज इन एंषिएण्ट इण्डिया (सं0 बी0पी0 सिन्हा), पटना यूनिवर्सिटी, पटना, पृ0 102.
10. सिंह, एच0एन0 1982 : हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलॉजी ऑफ ब्लेक एण्ड रेड वेयर (चाल्कोलिथिक पीरियड), सन्दीप प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 97.
11. राय, दीपक कुमार 2008 : मध्य गंगा घाटी की मृद्भाण्ड परम्पराओं का अध्ययन, कला प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 70
12. वही, पृ0 25.

*****